

## शब्द से अ-शब्द की ओर जाने का आख्यान : असाध्य वीणा

डॉ. हरीश अरोड़ा

हिन्दी विभाग

पी.जी.डी.ए.वी. कॉलेज (सांध्य)

(दिल्ली विश्वविद्यालय)

नेहरू नगर, नई दिल्ली-110 065

हिन्दी कविता में 'प्रयोगवाद' के पुरोधा कवि सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' आधुनिक युग में विवादास्पद कवियों में से एक हैं। एक ओर तो आलोचकों का एक समूह उन्हें आधुनिक नए साहित्य का जन्मदाता मानकर उनका सम्मान करता है वहीं दूसरी ओर कुछ ऐसे आलोचक भी हैं जो उनके नए साहित्य को केवल पश्चिम की नकल के अतिरिक्त कुछ नहीं मानते। कुछ भी हो, हिन्दी कविता में 'प्रयोगवाद' और 'नयी कविता' के निर्माण में 'अज्ञेय' का महती योगदान रहा है।

अज्ञेय की कविता 'असाध्य वीणा' उनके काव्य संग्रह 'आंगन के पार द्वार' के अन्तिम खण्ड की एकाकी कविता है। यह कविता हिन्दी की लम्बी कविताओं में अपना विशेष स्थान रखती है। इस संग्रह से पूर्व अज्ञेय का 'अरी ओ करुणा प्रभामय' संग्रह प्रकाशित हुआ था। इन दोनों ही संग्रहों में अज्ञेय की जापान यात्रा का प्रभाव लक्षित होता है। उनकी हाइकु कवितायें जापान की ही विधा पर आधारित हैं। लेकिन विशेष रूप से जापान के ज़ेन बौद्धमत की विचारणा का प्रभाव उनकी कविताओं पर गहराई से पड़ा है। भारत के 'ध्यान सम्प्रदाय' की विचारणा भी इसी प्रकार की ही है। 'असाध्य वीणा' पर इस मत का पूर्ण प्रभाव लक्षित है।

'असाध्य वीणा' प्रसिद्ध चीनी आख्यान 'टेमिंग ऑफ हार्प' पर आधारित है। यह कथा जापान की संस्कृति विषयक पुस्तक 'द बुक ऑफ टी' में लकड़ी से एक साधक ने वीणा का निर्माण किया, किन्तु न तो वह स्वयं ही उस वीणा को बचा सका और नहीं कोई अन्य कलावंत। अन्त में एक साधक 'पाईवाह' उसे साधने के लिए आता है और वह स्वयं को उस महान किरि वृक्ष के प्रति समर्पित कर देता है जिससे वह वीणा बनी है। वह वीणा नहीं बचाना चाहता बल्कि स्वयं बजना चाहता है और वीणा उसके बजने की प्रक्रिया से ही स्वयं बज उठती है। प्रस्तुत आख्यान को आधार बनाकर अज्ञेय ने 'असाध्य वीणा' की सर्जना की। इस कविता में कवि ने दो नए संदर्भ भी दिए हैं। पहला संदर्भ है विभिन्न प्रकार की मानवेतर स्थूल और सूक्ष्म प्रकृति ध्वनियों के सम्भार के साथी और गृहीता के रूप में किरिटी तरु को देखना। दूसरा संदर्भ है, इस समष्टि ध्वनि के ध्यान के द्वारा मुखरित वीणा के स्वर में मनुष्य का अपने भीतर की आकांक्षा की पूर्ति करने वाली ध्वनि का साक्षात्कार। बिंबात्मक भाषा के प्रयोग की ऐसी सर्जनात्मकता हिन्दी कविता में शायद ही इससे पूर्व कभी देखी गई हो।

'असाध्य वीणा' कविता को विश्लेषित करें तो इसे चार खण्डों में विभाजित किया जा सकता है। पहले खण्ड में वीणा बजाने का आमंत्रण, दूसरे खण्ड में वीणा बजाने की प्रक्रिया, तीसरे में

वीणा—वादन और उसका प्रभाव तथा चौथे खण्ड में प्रियंवद का वक्तव्य और कथा की समाप्ति। पूरी कविता में जेन सम्प्रदाय के मौन के महत्त्व का प्रतिपादन हुआ है। लेकिन द्रष्टव्य यह है कि इसमें मौन से स्वर की ओर जाने की तथा पुनः स्वर से मौन की ओर लौटने की यात्रा है जिसे व्यष्टि से समष्टि में समाहित होने तथा समष्टि से व्यष्टि में अलग-अलग उतरने की प्रक्रिया कहा जाता है। यह भारतीय 'ध्यान सम्प्रदाय' के मुखरित मौन का ही प्रतिरूप है। अज्ञेय ने मौन की अभिव्यंजना को काव्य में अधिक अर्थपूर्ण माना है। वे मानते हैं कि 'कविता में अर्थगर्भ शब्दों का ही नहीं बल्कि अर्थगर्भ मौन का भी उपयोग होता है।'<sup>1</sup> कई बार कविता के मध्य में शब्दों और पंक्तियों के बीच का शब्दहीन अन्तराला किसी विशिष्ट अर्थ को द्योतित करता है। अज्ञेय के अनुसार 'कविता शब्दों के बीच नीरवता में होती है।'<sup>2</sup> 'असाध्य वीणा' में भी इसी मौनालाप द्वारा प्रियंवद उस असाध्य वीणा को साध पाने में सक्षम होता है।

कविता की विषय वस्तु की ओर ध्यान दिया जाए तो वह अत्यन्त संक्षिप्त ही है। राजा के पास एक वीणा थी जिसे कोई भी कलावन्त साध पाने में सक्षम नहीं हो सका। गुफा-गेह में रहने वाला 'केश-कम्बली' — प्रियंवद अपनी मौन साधना द्वारा उसे साधता है। वीणा को साधते समय वह अपनी व्यक्तिगत चेतना को, अपने अहं को उस वीणा के प्रति समर्पित कर देता है। वीणा के भीतर समष्टि की वाणी है। प्रियंवद मौन से स्वर की ओर बढ़ता है। उसे अपने ध्यान में समष्टि की अन्तर्ध्वनियाँ सुनाई देती हैं जिसमें विश्व का नाद समाया हुआ है। उसे वीणा में से 'वर्षा बूंदों की पटपट', 'महुए का चुपचाप टपकना', 'अनमनी बाँसुरी', 'कठफोड़वे का ठेका', 'फुलसुँघनी की आतुक फुरकन', 'ओस बूंद की ढरकन', 'लहरियों की सरसर-ध्वनि', कूँजों का क्रंकार', 'टिट्ठिभ की लम्बी काँद', 'पंख-युक्त सायक सी हंस-बलाका', 'पतंग की टकराहट',

'जल प्रपात का प्लुत-एक-स्वर', 'झिल्ली दादुर', 'कोकिल-चातक की झंकार पुकारें', 'संसृति की साँय-साँय', 'मेघों की बाढ़', 'हाथियों की चिंघाड़', 'एँठी मिट्टी का स्निग्ध घाम में धीरे-धीरे रिसना', 'वन पशुओं की नाना-विध आतुर-तृप्त पुकारें' आदि के स्वर सुनाई देते हैं। लेकिन साधना की गहराई में प्रियंवद का 'मैं' उस वीणा के प्रत्येक शब्द में समाहित हो जाता है —

सुनता हूँ मैं

पर वह स्वर-कम्पन लेता है मुझको मुझ से  
सोख  $\mu$

वायु-सा नाद-भरा मैं उड़ जाता हूँ

मुझे स्मरण है  $\mu$

पर मुझको मैं भूल गया हूँ सुनता हूँ मैं  $\mu$

पर मैं मुझे से परे, शब्द में लीयमाना<sup>3</sup>

इस संदर्भ में किसी आलोचक ने कहा है कि— 'व्यक्ति का अभिमान विराट् के प्रति अर्पित होकर विराट् को गतिशील बना देता है। जब तक व्यक्ति के भीतर विराट् निजात से सम्बन्ध स्थापित नहीं होता, तब तक वह एक अभिमंत्रित जड़ पदार्थ बना रहता है। उसे गतिशील बनाने के लिए व्यक्ति की आवश्यकता है और व्यक्ति को अपनी निजता प्रमाणित करने के लिए उस विराट् की आवश्यकता है। जब दोनों परस्पर साकांक्षा हो जायें और दोनों के बीच परस्पर पूर्ण रागात्मक सम्बन्ध स्थापित हो जाए, तब विराट् व्यक्ति की ओर उन्मुख हो जाता है, सृष्टि की धारा फौव्वारे की तरह एक केन्द्र से ऊपर जाकर अनेक केन्द्रों को छूने लगती है।' 'ध्यान सम्प्रदाय' में आत्मा को मौन के माध्यम से परमात्मा के साथ एकीकृत करने की यही साधना है।

अज्ञेय का मानना है कि बिना अपने अहं के विसर्जन किए व्यक्ति अपनी परम्परा की आंतरिक चेतना को नहीं समझ सकता। उनके अनुसार — 'प्राचीन कवियों की महत्ता का असल

रहस्य यही है कि वे अहं को विलीन करके लिखते थे।<sup>4</sup> 'असाध्य वीणा' को शोधने के लिए प्रियंवद को अपने अहं का विसर्जन करना पड़ा। यह वीणा साहित्य-साधक का संकेत रूप ही है। रचनाकार को जीवन की परम्पराओं और उसकी समग्रता को जानने के लिए पहले आत्म-शोध करना पड़ता है, अपने अहं का त्याग करना पड़ता है तभी वह शब्द के भीतर स्थित अशब्द की अर्थवत्ता को समझ पाता है।

प्रियंवद से पहले कोई भी कलावंत उस वीणा को नहीं साध पाया क्योंकि उनका अहंकार परम्परा से निर्मित उस वीणा को सामान्य वीणा समझ रहा था। वीणा ने सृष्टि के अनेक घात-प्रतिघातों को सहकर दृढ़ स्वरूप प्राप्त किया, इसी तरह परम्परा भी समाज के अनेक परिवर्तनों से निर्मित हुई। इसलिए दोनों को सामान्य-साधक नहीं साध सकता था। प्रियंवद ने न केवल अपने अहं के विसर्जन द्वारा उस वीणा से मौन एकालाप किया प्रत्युत् उसकी ध्वन्यात्मकता में विद्यमान अनेक स्वरों को सभी के लिए उनके अनुसार गुंजरित भी किया। लोगों ने इसकी झंकृति को अपने-अपने ढंग से लिया। अधूरे समर्पण से भी साधक उस वीणा में विद्यमान जीवन सत्य की ध्वनि का संदेश प्राप्त नहीं कर सकता। उसके लिए पूर्ण समर्पण की आवश्यकता है। पूर्ण समर्पण ही साधक को अद्वैत की स्थिति में ले आता है, जहाँ उसे सत्य की प्रतीति होती है। यह सत्य ही महाशून्य है, महामौन है, अविभाष्य है, अनाप्त है, अद्रवित है और अप्रमेय है। इस सत्य को प्राप्त करके ही प्रियंवद का व्यक्तित्व नवीन चेतना से युक्त हो जाता है। समष्टि में मिलकर ही प्रत्येक व्यक्ति को नए संस्कार मिलते हैं क्योंकि इसमें समूचे जीवन की साधना के रूप में परम्परा है। समष्टि में सब कुछ है जो व्यक्ति को अभिप्रेत है। व्यक्ति समष्टि में एकाकार हो अपनी नयी पहचान बनाता है। इसीलिए संगीत के साथ एकाकार की स्थिति में सभी लोग एक ही अवस्था में आबद्ध हो जाते हैं,

सभी के शब्द उस वीणा के साथ अ-शब्द की स्थिति तक पहुँच जाते हैं। आत्मा के भीतर चलता यह 'अजपा जाप' सभी को उस वीणा से पूरी तरह एकीकृत कर देता है। किन्तु वीणा के झंकृत स्वरों से जो अन्तर्नाद मिलता है वह सबको अपने-अपने अनुसार प्राप्त होता है। सत्य एक ही है किन्तु सभी के लिए अपने-अपने अनुरूप।

साहित्य-साधक भी साहित्य लिखते समय मौन की अभिव्यक्ति देता है। कविता में भी अर्थ की अनेक परतें होती हैं। पाठक को जो अर्थ रुचे, वही उसका सत्य है। कवि के अनुसार 'शब्द' ही शाश्वत है, ब्रह्म है और उसी में लीयमान होकर ही साहित्यकार को जीवन के सत्य की नाद-ध्वनि सुनाई पड़ती है। साहित्य-रचना के समय कवि का अस्तित्व, उसकी सत्ता निरपेक्ष बनी रहती है, वह खण्डित नहीं होती। लेकिन समष्टि की चेतना अपनी-अपनी दृष्टि से उस साहित्य के अर्थ को भी ग्रहण करती है—

*सबने अलग अलग संगीत सुना*

*इसको*

*वह कृपा वाक्य था प्रभुओं का μ*

*उस को*

*आतंक-मुक्ति का आश्वासन :*

*इस को*

*वह भरी तिजोरी में सोने की खनक μ*

*उसे*

*बटुली में बहुत दिनों के बाद अन्न की  
सौँधी*

*खुदबुदा*

*किसी एक को नयी वधू की सहमी-सी*

*पायल-ध्वनि*

*x x x x*

उसे युद्ध का ढोल :

इसे संज्ञा-गोधूली की लघु टुन-टुन “

उसे प्रलय का डमरू-नाद।

इस को जीवन की पहली अँगड़ाई

पर उस को महाजुम्भ विकराल काल।<sup>f</sup>

सभी ने वीणा की झंकार में अपने-अपने सत्य को पाया, सब की इयत्ता अलग-अलग जागी। व्यष्टि के समर्पण से ही समष्टि की चेतना का उदय होता है किन्तु समष्टि की चेतना व्यष्टि की इयत्ता को समाप्त नहीं करती बल्कि उसे और अधिक आलोकित करके अपनी चेतना में प्रखरता भरती है।

अज्ञेय के अनुसार अपने को साधना, आत्म-शोध करना ही अपने अहं का विलयन है। इलियट के 'निर्वैयक्तिकता' के सिद्धांत में भी वैयक्तिकता का विसर्जन ही व्यष्टि से समष्टि की चेतना को लक्षित करता है। अज्ञेय पर इलियट का प्रभाव अत्यन्त गहरे स्तर पर रहा है। उसके 'परम्परा' और 'निर्वैयक्तिकता' के सिद्धांतों की छाया अज्ञेय की कविताओं पर साफ दिखाई देती है। 'असाध्य वीणा' में भी वीणा 'परम्परा' के प्रतीक रूप में ही रखी जा सकती है। परम्परा जीवन की इयत्ता को नहीं छीनती बल्कि समय और परिस्थिति के अनुसार उसे स्वरूप देने में सहायता करती है। इस नए स्वरूप को देकर ही परम्परा भी सार्थक होती है।

इस कविता की संरचना की विशेषता इस बात में है कि इसमें मौन से स्वर की ओर जाने और पुनः लौट आने की प्रक्रिया है, व्यक्तित्व का

समर्पण है, अद्वैत है, रहस्य भी है – किन्तु यदि नहीं है तो संवेदना। शब्दों का प्रयोग इतना सार्थक है कि कथा चमत्कृत बन पड़ी है। पदबंधों को ऐसा सुन्दर संघटन है कि कविता की प्रत्येक पंक्ति विराट अर्थ-बोध को लक्षित कर पाने में स्वयं को सहज पाती है। ऐसा लगता है कि कवि ने शब्दों की किसी चट्टान को तराश कर एक सुन्दर काव्य-प्रतिमा का निर्माण किया है। कविता का विराट-सृष्टि व्यापार सादृश्य विधान और बिम्बों के कारण अत्यन्त सहजता से प्रकट हुआ है। ध्वनि-चित्रों की लड़ियाँ और नाटकीय संरचना ने कविता को अद्भुत बना दिया है। शब्द से अ-शब्द की ओर जाने का यह आख्यान अपनी संरचनात्मकता में पूर्णतः गरिमामयी और विशिष्ट बन पड़ा है।

## संदर्भ

1. अज्ञेय, 'शब्द, मौन, अस्तित्व', अद्यतन, पृष्ठ 78
2. अज्ञेय, 'शब्द, मौन, अस्तित्व', अद्यतन, पृष्ठ 79
3. अज्ञेय, अज्ञेय की प्रतिनिधि कविताएं एवं जीवन परिचय (सं. विद्यानिवास मिश्र), पृष्ठ 147
4. अज्ञेय, 'शब्द, मौन, अस्तित्व', अद्यतन, पृष्ठ 81
5. अज्ञेय, अज्ञेय की प्रतिनिधि कविताएं एवं जीवन परिचय (सं. विद्यानिवास मिश्र), पृष्ठ 147